Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 25-12-2021, Accepted: 10-01-2022, Published: 27-01-2022
Volume 3, Issue 1, 2022, Page No. 1-6

धर्म तथा स्त्री–विमर्श

साध्वी अनुग्या[1], मैथिली प्र. राव[2]
[1] शोधार्थी, सांस्कृतिक अध्ययन विभाग, जैन अभिमत पात्र विश्वविद्यालय, बेंगलूरु, कर्नाटक, भारत
[2] प्रोफेसर, जैन अभिमत पात्र विश्वविद्यालय, बेंगलूरु, कर्नाटक, भारत

सारांश
यह सर्वविदित है कि समय के साथ सब कुछ बदलता है। सभी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि सभी परिस्थितियां नित्य परिवर्तनशील हैं । सामाजिक – सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यदि देखा जाए तो पिछले शताब्दी में स्त्रियों के लिए अनेक सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं। धर्म पर भी इसका पर्याप्त प्रभाव हुआ है। विश्व के सभी प्रमुख धर्मों में स्त्री को अनेक अवसर एवं अधिकार प्राप्त होने लगे। धार्मिक अनुष्ठानों के अलावा, कई धर्मों में, आध्यात्म के दृष्टिकोण से भी स्त्रीयों को अनेक अवसर प्राप्त होने लगे। वैशविक परिवेश में हुए, स्त्री संबंधी, आंदोलनों ने इसे गति प्रदान की। यह आलेख धर्म एवं स्त्री विमर्श के इस अन्योनाश्रित संबंध का अन्वेषण का प्रयास करता है।

मूल शब्दः धर्म, स्त्री विमर्श, सामाजिक–सास्कृतिक आंदोलन, आधुनिक वैशविक परिप्रेक्ष्य

प्रस्तावना

धर्मः अर्थ तथा व्युत्पत्ति

'धर्म' संस्कृत भाषा का शब्द है जो कि धारण करने वाली 'धृ' धातु से बना हैं। "धृयते धार्यते सेवते इति धर्मः"[1] अर्थात जो धारण किया जाये वह धर्म हैं। अर्थात जिससे लोक को धारण किया जाए, जो संसार को धारण करता या करवाता हो वह धर्म है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं की मनुष्य जीवन को उच्च व पवित्र बनाने वाली ज्ञानानुकूल जो शुद्ध सार्वजानिक मर्यादा पद्धति है वह धर्म है। जैमिनी मुनि के मीमांसा दर्शन के दूसरे सूत्र के अनुसार, "लोक परलोक के सुखों की सिद्धि के हेतु गुणों और कर्मों में प्रवृति की प्रेरणा धर्म का लक्षण कहलाता हैं।" महाभारत के अनुसार, "धारणाद धर्ममित्याहुरू,धर्मो धार्यते प्रजारू"[2] अर्थात जो धारण किया जाये और जिससे प्रजाएँ धारण की हुई हैं वह धर्म है। एक अन्य स्थान में आचरण को अधिक महत्व देते हुए कहा है, "आचाररूपरमो धर्म"[3] अर्थात सदाचार परम धर्म है । वैशेषिक दर्शन के कर्ता महा मुनि कणाद ने धर्म को लक्षणों के आधार पर परिभाषित करते हुए उसे और अधिक व्यापकता प्रदान किया है । "यतोअभयुद्य निश्रेयस सिद्धिरू स धर्मः"[4] अर्थात जिससे अभ्युदय (लोकोन्नति) और निश्रेयस (मोक्ष) की सिद्धि होती है, वह धर्म है। सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी दयानंद के अनुसार, "जो पक्षपात रहित न्याय सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्याग रूप आचार है उसी का नाम धर्म और उससे विपरीत का अधर्म है।"[5]

अब्राहमिक धर्मों में परमात्मा के प्रति आस्था को ही धर्म माना गया है, ईश्वर को दुनिया का सृजनकर्ता माना गया है और हम सब उसके नियमों पर चलने को बाध्य हैं । इन धर्मों में शैतान की भी अवधारणा है जो लोगों को ईश्वर आराधना से रोकता है, गलत मार्ग पर चलने के लिए उकसाता है । नैतिकता और मानवता भी काफी हद तक धार्मिक नियमों के द्वारा परिभाषित होती हैं । एक ईश्वर, एक साधना पद्धति, एक ही धार्मिक किताब और एक से धार्मिक नियम कानून कायदे, ये इन धर्मों की पहचान है।

हिन्दू सनातन सिद्धांतधारा में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष में धर्म का प्रमुख स्थान है। दर्शन और अध्यात्म दोंनों धर्म के पर्याय हैं किन्तु दोनों का अर्थ अलग है। धर्म मूल स्वभाव की खोज है, धर्म एक रहस्य है,संवेदना है, संवाद है, आत्मा की खोज है, धर्म स्वयं की खोज का नाम है ।अनन्त और अज्ञात में छलांग लगाना धर्म है। जन्म मृत्यु जीवन को जानना भी धर्म है । मनु स्मृति के अनुसार, 1–धृति 2–क्षमा 3–दम 4–अस्तेय 5–शौच 6–इंद्रिय निग्रह 7–धी (बुद्धिमत्ता का प्रयोग) 8–विद्या 9–सत्य 10– अक्रोध यह दस धर्म के लक्षण बताये गये है ।इनमे सत्य का प्रमुख स्थान है।अर्थात सत्य ही धर्म है और धर्म ही सत्य है।[6]

अपने व्यापकतम अर्थ में किसी भी वस्तु के स्वाभाविक गुणों को उसका धर्म कहते हैं जैसे अग्नि का धर्म उसकी गर्मी और तेज है। गर्मी और तेज के बिना अग्नि की कोई सत्ता नहींय प्रजा का पालन एवं रक्षण राजा का धर्म हैय मनुष्य का स्वाभाविक गुण मानवता है, यही उसका धर्म है।

परंतु अंग्रेजी में इस शब्द का रूपांतरण 'रिलिजन' के रूप में किया गया है जिसका अर्थ किसी एक विशेष सम्प्रदाय या पन्थ से है एक विशेष प्रकार की पारलौकिक सत्ता में विश्वास रखता है, जो कुछ विशेष सिद्धान्तों को उचित मानता है व उसका भगवान को याद करने का एक विशेष तरीका होता है। जैसे–हिन्दू धर्म,मुस्लिम धर्म,बौद्ध धर्म,पारसी धर्म इत्यादि । धर्म एक संगठित प्रणाली है, विश्वासों और प्रथाओं के चारों ओर घूमने या एक अग्रणी आध्यात्मिक अनुभव। मानव इतिहास में ऐसी कोई भी संस्कृति दर्ज नहीं की गई है, जिसने धर्म का किसी न किसी रूप में उसका अभ्यास नहीं किया हो।[7]

धर्म शब्द को यदि 'रिलिजन' का पर्याय – रूप माना जाए तो यह निर्धारित किया जा सकता है कि उसकी व्युत्पत्ति, लैटिन के 'रिलिजिओ' से हुई है जिसका अर्थ है श्संयम,श या सिसरो के अनुसार 'रेलेगेर' (Relegere) से जिसका तात्पर्य है श्फिर से दोहराना, फिर से पढ़नाश, एक अन्य संभावना है, 'रिलिजिओनेम' (Religionem), श्जो पवित्र है उसके प्रति

सम्मान दिखाना। एक संगठित प्रणाली जो विश्वासों और प्रथाओं पर आधारित है, या एक अग्रणी आध्यात्मिक अनुभव। मानव इतिहास में ऐसी कोई भी संस्कृति दर्ज नहीं की गई है, जिसमें किसी प्रकार के धर्म का पालन न किया गया हो।[8] वर्तमान समय में श्पौराणिक कथाओंश के रूप में मान्य स्वरूप ही प्राचीन काल में धर्म माना जाता था, जो कि उच्च अलौकिक संस्थाओं में एक विश्वास के आधार पर नियमित अनुष्ठानों से बना था, जो दुनिया और आसपास के ब्रह्मांड को पोषित रखता था। ये संस्थाएं मानवविज्ञानी थीं और संस्कृति के मूल्यों को बारीकी से दर्शाती थीं। धर्म, तब और अब, मानव स्थिति, देवी–देवताओं (या एक एकल व्यक्तिगत देवता या देवी), दुनिया का निर्माण, दुनिया में एक इंसान का स्थान, मृत्यु के बाद का जीवन, अनंत काल, आदि आध्यात्मिक पहलू के साथ खुद को व्यस्त रखता है तथा यह प्रतिष्ठापित करता है कि कैसे इस लोक या परलोक में पीडा से बचने के लिए हर देश ने अपनी छवि और अपना ईश्वर सृजित किया है। सामान्य, सरल भाषा में कहा जा सकता है कि धर्म विश्वास, परंपराओं, विचारों और सांस्कृतिक प्रथाओं को माना जाता है जो एक विशेष मानव समूह को एक साथ रखते हैं। इस दुनिया में विभिन्न रहस्य हैं, और धर्म हमेशा मानवता का केंद्र रहा है और धर्म ने हमेशा इन रहस्यों के अर्थों की व्याख्या करने का लक्ष्य रखा है, साथ ही साथ ब्रह्मांड की उत्पत्ति भी। भारतीय चिंतन परंपरा में धर्म का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। मानव सभ्यता के एक अटूट हिस्से के रूप में प्रस्तुत यह जीवन–तत्व हमारी सांस्कृतिक तथा वैचारिक इतिहास का एक अभिन्न अंग है। प्रायरू प्रथम साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए धर्म ही आधार बना था, अखिल ब्रह्माण्ड को समझने का एक प्रयत्न था, इस ब्रह्माण्ड में हम कहां हैं, हमारी स्थिति–गति क्या है, कहां से आए और कहां जा रहे हैं आदि आध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर भी हमें इसी धार्मिक मार्ग में चलने से प्राप्त होता है। इतना ही नहीं स्थूल शारीरिक स्तर पर भी, विग्यान के विकास के बहुत पहले, चिकित्सा, स्वास्थ्य आदि से जुडे दार्शनिक चिंतन के प्रारंभिक स्वरूप में भी धर्म का ही मार्ग अपनाया था। धर्म वो माध्यम है जिससे मानव जाति को आध्यात्मिकता, और विभिन्न नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों से संबंधित किया जा सकता है। प्राचीन भारत में, यह माना जाता है कि धार्मिक लोग मानव जाति के पहले शिक्षक हैं। वे जीवन, मृत्यु, भगवान और विभिन्न प्रथाओं के लिए लोगों को बाध्य करने के नैतिक मूल्य प्रदान करते हैं। अधिकांश बच्चे इन धार्मिक लोगों से शिक्षा चाहते हैं। कई धर्मों के अपने नैतिक मूल्य, व्यवहार और शास्त्र हैं। इन प्रथाओं में एक देवता, देवी, कर्तव्य, दावत, त्योहार, संगीत, नृत्य, कला के लिए अनुष्ठान, बलिदान शामिल हैं। प्रारंभिक दौर में जब समाज में किसी भी प्रकार की कानून व्यवस्था नहीं थी तब मनुष्यो को उचित आचरण और सदमार्ग पर चलने की प्रेरणा देने के लिए बुद्धजीवियों द्वारा धर्म की स्थापना की गई जिसमें वैज्ञानिक, सामाजिक, न्याय संगत और कर्मयुक्त तथ्यों का समावेश किया गया। उन्ही बुद्धजीवियों ने प्रकृति की अलौकिक सुंदरता को देख कर माना या अनुभव किया की सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन अवश्य ही किसी ना किसी अलौकिक शक्ति के हाथों से होता होगा। जिसे उन्होंने अपने – अपने धर्मो में अलग – अलग नामों से समावेशित किया और उस अलौकिक शक्ति द्वारा व्यक्ति के किये गए कुकर्मों के लिए दंड की अवधारणा को विकसित किया जिसके भय से समाज में आपराधिक घटनाओ पर नियंत्रण पाया जा सके और साथ ही इन धर्मो को मानने वाले व्यक्तियों के लिए आस्तिकवाद की नींव रखी ताकि मनुष्य निराशा की विपरीत परिस्थितियों से निकल सके। समय के साथ इंसान ने जब ईश्वर की सत्ता और अस्तित्व को नकारते हुए अनुचित मार्ग की ओर अपने कदम बढ़ाना प्रारम्भ किया तब कानून का निर्माण आवश्यक हो गया। ब्रह्मांड के कारण, प्रकृति और उद्देश्य के बारे में विश्वासों के एक समूह के रूप में धर्म की व्याख्या की जा सकती है। खासकर जब पृथ्वी को एक अलौकिक माध्यम या माध्यमों के निर्माण के रूप में माना जाता है, जिसमें आमतौर पर भक्ति और अनुष्ठान पर्यवेक्षण शामिल होते हैं और अक्सर मानव आचरण को नियंत्रित करने वाले नैतिक संहिता होती है।

स्त्री–विमर्श

स्त्री–विमर्श रूढ़ हो चुकी मान्यताओं, परंपराओं के प्रति असंतोष व उससे मुक्ति का स्वर है। पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदंडों, मूल्यों व अंतर्विरोधों को समझने व पहचाने की गहरी अंतर्दृष्टि है। विश्व चिंतन में यह एक नई बहस को जन्म देता है, पितृक प्रतिमानों व सोचने की दृष्टि पर सवालिया निशान लगाता है, आखिर क्यों स्त्रियाँ अपने मुद्दों, अवस्थाओं, समस्याओं के बारे में नहीं सोच सकतीं? क्यों उनकी चेतना इतने लम्बे अरसे से अनुकूलित, अनुशासित व नियंत्रित की जाती रही है, क्यों वे साँचों में ढली निर्जीव मूर्तियाँ हैं? क्यों उनकी अपनी कोई पहचान नहीं है? इन सब प्रश्नों पर स्त्री ने जब बोलना व सोचना शुरू किया व पितृसत्ता के सामने सवाल खड़े किए तो यह उसे नागवार गुजरा। स्त्री का खुद के बारे में सोचना कभी भी पितृसत्ता को नही भाया। सीमोन द बोउआर कहती भी हैं–''स्त्री, पुरुष प्रधान समाज की कृति है। वह अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए स्त्री को जन्म से ही अनेक नियमों के ढाँचे में ढालता चला गया"।9 जहाँ उसका व्यक्तित्व दबता चला जाता हैय वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष को चुनौती देकर स्वयं अपनी शक्ति का परीक्षण चाहती है। स्त्री अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व और अपनी पहचान चाहती है वह अपना पूरा जीवन (बेटी, पत्नी, माँ) अन्या होकर नहीं जीना चाहती। इसके लिए उसका सारा प्रयास पितृसत्तात्मक मानसिकता के अस्वीकार व स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकृति का है। स्त्री विमर्श सदियों से चले आ रहे मौन को अभिव्यक्ति देता है। तथाकथित नैतिक मूल्यों, पितृक व्यवस्थाओं को छिन्न–भिन्न करता है जो स्त्री की चेतना को अनुकूलित करते हैं। स्त्री विमर्श साहित्य में 'विमर्श' के रूप में 60 से 70 के आसपास आता है। उससे पूर्व पश्चिम में यह नारीवादी आंदोलन के रूप में अपनी मुखर अभिव्यक्ति पा चुका था। नारीवाद'अंग्रेजी के Feminism (फैमिनिज्म) शब्द का पयार्य है। 'फैमिनिज्म' फ्रेंच शब्द फेमी (Femme) अर्थात् सामाजिक आंदोलन और इज्म (पेउ) राजनैतिक विचारधारा के मिलने से बना है। इसका प्रयोग सबसे पहले 1880 ई. में फ्रांस, 1890 में ग्रेट ब्रिटेन और 1910 में संयुक्त राज्य अमेरिका में होता है।

नारीवाद

नारीवाद महिलाओं का राजनीतिक आंदोलन है जो पुरुषों और महिलाओं के बीच उत्पन्न अंतर्विरोधों द्वारा उत्पन्न होता है। यह उत्पीड़न के खिलाफ महिलाओं की प्रतिक्रिया को जानने का प्रयास है। महिलाओं से अधिक पुरुषों को शक्ति और विशेषाधिकार प्राप्त है यह विचार भी नारीवादी आंदोलन को पैदा करता है। 'नारीवाद' आंदोलन एकजुटता है जिसका

उद्देश्य महिलाओं के लिए समान राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की रक्षा को परिभाषित व स्थापित करना है साथ उन्हें शिक्षा और रोजगार के अवसर मुहैया कराना है। जेन्डर के स्तर पर राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता का सिद्धांत है। इसके माध्यम से वर्तमान में, पुरुष या महिला, या दोनों को, बदलने का प्रयास भर नहीं है, यह प्रयास है उन दोनों के बीच संबंधों को बदलने का।

नारीवादी सिद्धांत महिलाओं द्वारा अपने अधिकारों के लिए किए आंदोलनों की उपज है जिसका उद्देश्य समाज में रह रही महिलाओं के अपने निजी अनुभवों द्वारा लिंग असमानता की प्रकृति को जानना व उसके माध्यम से सेक्स और जेंडर जैसे विषयों पर सिद्धांत विकसित करना था। नारीवाद को सैद्धांतिक आधार पश्चिम में हुए महिलाओं के आंदोलनों से मिला। आधुनिक पश्चिमी नारीवादी आंदोलन के इतिहास को तीन धाराओं में समझा जा सकता है। पहली धारा 19वीं सदी से 20वीं सदी के पूर्वार्ध की है जिसकी पृष्ठभूमि में अमेरिका और ब्रिटेन थे। इन आंदोलन का मुख्य केन्द्र स्त्री थी जिसमें समान अनुबंध (Promotion of Equal Contract) विवाह, मातृत्व और महिलाओं के लिए संपत्ति के अधिकार को बढ़ावा देना था। 19वीं सदी के अंतिम दशक तक आते–आते इसका ध्यान राजनीति में सक्रिय भूमिका पाने व विशेष रूप से मताधिकार पर केन्द्रित हुआ हालांकि कुछ नारीवादियों ने महिलाओं के यौन, प्रजनन और आर्थिक अधिकारों के मुद्दों को भी उठाया परन्तु महिला मताधिकार का स्वर सबसे तीव्रतम स्वर बनकर उभरा। नारीवादी आंदोलनों की दूसरी धारा महिला मुक्ति आंदोलन के साथ जुड़ती है जिसकी शुरूआत 1960 के दशक के आस–पास होती है, जिसमें महिलाओं की सामाजिक और संवैधानिक समानता का प्रश्न प्रमुख था। साथ ही इसमें सांस्कृतिक और राजनैतिक असमानताओं व निजी जीवन में बढते राजनैतिक दखल से जुड़े मुद्दों को भी उठाया गया जिसके लिए नारीवादी कार्यकर्ता और लेखक कैरोल हनिश्च ने 'the personal is political' का नारा दिया जो बाद में इस धारा का पयार्य बन गया। तीसरी धारा की शुरूआत संयुक्त राज्य अमेरिका में 1990 के दशक से मानी जाती है जिसका जन्म दूसरी धारा की असफलता व उससे जुड़े आंदोलनों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ।

महिलाओं की समस्याओं व उनके प्रश्नों की पड़ताल करें तो इसकी जड़े हमें 18वीं सदी के मानवतावाद और औद्योगिक क्रांति में दिखाई देती हैं। स्त्रियों के लिए व्यापक अवसर प्रदान किए जाने का स्वर पहले ही उठ चुका था आंदोलन के रूप में इसकी शुरूआत 1848 से होती है जब एलिजाबेथ केंडी स्टैण्डन, लुक्रेसिया कफिन मोर और कुछ अन्य ने न्यूयार्क में महिला सम्मेलन करके 'नारी स्वतंत्रता' पर एक घोषणा पत्र (A Declaration of Sentiments) जारी किया, जिसमें पूर्ण कानूनी समानता, शैक्षिक और व्यावसायिक अवसर, समान मुआवजा, मजदूरी कमाने तथा मताअधिकार की मांग की गई थी। इसके पूर्व 1845 में मारगरेट फूलर की पुस्तक Women in the Nineteenth Century प्रकट हुई जो यूरोप में उठे स्त्री अधिकारों के मुद्दों को सामने लेकर आई।

नारीवादियों का यह आंदोलन इतना प्रभावशाली रहा की इसका स्वर पूरे यूरोप में सुनाई देने लगा, जिसका परिणाम 1893 में न्यूजीलैण्ड और 1895 में दक्षिण आस्ट्रेलिया की स्वराज्य कॉलोनियों में महिलाओं को मताअधिकार प्राप्त हुआ। 1918 में ब्रिटेन में व पुनः संशोधन के बाद 1928 में महिलाओं को मताधिकार प्राप्त होता है। अमेरिका में 1919–1920 के आसपास महिला मताधिकार अधिनियम पारित हुआ जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं में पुरुष के समकक्ष बराबरी के सवाल को लेकर दो खेमें उभरे। एक खेमा राष्ट्रीय महिला पार्टी का था जो पुरुष के समकक्ष स्त्रियों की बराबरी की वकालत करता था जबकि दूसरे खेमे का यह कहना था कि महिलाओं के लिए कुछ संरक्षणात्मक कानून बनाए जाएं। 19वीं सदी में संरक्षणात्मक कानून के विविध रूप अमल में लाए जा चुके थे। जैसे स्त्रियों के लिए काम करने की समय सीमा का निर्धारण करना, खतरनाक व्यवसायिक पेशों से मुक्त रखना आदि। 1946 में नारी दशा पर संयुक्त राष्ट्रसंघ ने एक आयोग गठित किया जिसका दायित्व विश्वभर की महिलाओं के लिए समान राजनैतिक, आर्थिक और शैक्षिक अधिकार दिलाना था, जिसके तहत 1948 में विश्व स्तर पर स्त्री और पुरुष समान अधिकार (The Equal Rights of men and women) कानून पारित हुआ। 1960 तक आते–आते स्त्री मुक्ति आंदोलन ने एक नया रूप लिया, जिसके तहत 1966 ई. में राष्ट्रीय महिला संगठन (National Organization of Women) का गठन हुआ । 1970 के आरंभ में इसकी 400 से भी अधिक स्थानीय शाखाएँ खुलीं। इन संगठनों ने गर्भपात सुधार, संघीय राज्य द्वारा अनुपोषित शिशु देखभाल केन्द्र, महिलाओं के लिए समान वेतन, महिलाओं की पेशों में तरक्की और महिलाओं के लिए शिक्षा, राजनीतिक प्रभाव और आर्थिक सत्ता हासिल करने की दिशा में समान कानून और सामाजिक बाधाओं के खात्मे के लिए प्रयास किया।

यह सच है कि पिछले दो सौ वर्षों में स्त्रियों ने बहुत से क्षेत्रों में काफी तरक्की की है। कुछ औरतों के लिए कुछ सामाजिक बंधन भी कम हुए हैं। कुछ कानून भी बदले तथा काफी हद तक औरतों को बराबरी का दर्जा भी दिया है। इन सबके बावजूद आज भी लगभग हर देश में स्त्रियों को न समान अधिकार है और न पूरी आजादी है। अर्चना वर्मा लिखती हैं, ''समाज यूँ नहीं बदला करता – वचनों, प्रवचनों, विवादों और विचारधाराओं से। उसको बदलने के लिए महामारी, अकाल, भूकंप, बाढ़ जैसी विराट पैमाने की कोई प्राकृतिक आपदा चाहिए या फिर युद्ध जैसी मानव रचित दुर्घटना क्योंकि ऐसे ही समय में मनुष्य की चेतना सामुदायिक रूप से इतनी तत्पर, सतर्क और संबद्ध होती है कि विचारों को शब्दों के घेरे से बाहर निकालकर कर्म में परिवर्तित कर दें।"[10]

समकालीन स्त्री चिंतन जिसे स्त्री विमर्श भी कहा जाता है, स्त्री, उसका जीवन और उस जीवन की समस्याओं को केन्द्रीय विषय बनाता है। वह पारंपरिक ज्ञान और दर्शन को चुनौती देता है। जहाँ स्त्री ज्ञाता नहीं बल्कि ज्ञान की विषय वस्तु मात्र है और ज्ञान का अधिष्ठाता पुरुष समाज है। इस कारण नारीवादी सिद्धान्त स्त्री केन्द्रित पाठ (ज्ञान) की चर्चा करता है, जिसका एक रूप महादेवी के काव्य में देखा जा सकता है। उनके काव्य को रहस्यवादी, विरह वेदना का काव्य माना जाता है वहीं यदि स्त्री दृष्टि से उसका अध्ययन करते हैं तो स्त्री की स्वतंत्र पहचान का प्रश्न स्वर उनके काव्य में सुनाई देता है, जहाँ वह कहती हैं– ''विस्तृत नभ का कोई कोनाध्मेरा न कभी अपना होना ध्परिचय इतना इतिहास यहीध्उमड़ी कल थी मिट आज चलीध् मैं नीर भरी दुःख की बदली''।[11] इस विस्तृत समाज रूपी नभ पर पुरुषों का ही एकाधिकार है। स्त्री यहाँ उपेक्षिता, अधीनस्थ एवं प्रताड़ित है उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं। वह माँ, पत्नी या बहू के रूप में समाज द्वारा मान्य है। उसका सम्पूर्ण जीवन इन्हीं पारिवारिक संबंधों की वेदी पर बलि चढता है और उसके बाद भी हाथ आते हैं तो केवल आँसू लेकिन नारीवादी आंदोलन और अध्ययन ने स्त्री की बनी बनाई छवि को तोड़ने का काम भी किया।

नारीवाद का ज्यों–ज्यों विकास होता गया इसकी शाखाएँ विभिन्न दिशाओं में फैलती गई। नारीवादी चिंतकों ने पारंपरिक दर्शन की स्त्री विरोधी प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला उन्होंने बताया की पारंपरिक दर्शन ने न केवल स्त्री के बौद्धिक प्रयास का अवमूल्यन किया, साथ ही उसके निजी मूल्यबोध को भी तुच्छ किया। चिंतन के क्षेत्र में स्त्री अपना स्थान बना सकती थी परन्तु पुरुष केन्द्रित सीमित सोच के कारण नहीं बना पाई। प्रभा खेतान के शब्दों में ''एलिसन जैगर कहती हैं दुनिया को तौलने का पुरुषोचित नजरिया रहा है। कुछेक प्लेटो, जॉन स्टुअर्ट मिल एवं मार्क्स ने स्त्री–पुरुष को समकक्ष रखने की चेष्टा की ही। किन्तु उनमें से अधिकतर दार्शनिकों अरस्तू, कान्ट, हीगेल और नीत्शे को स्त्री जाति की बौद्धिक और तार्किक क्षमता पर गहरा संदेह था। अरस्तू जैसे महान विचारक भी पुरुष की विशेषता प्रभुत्व को, वही स्त्री की विशेषता उसकी आज्ञाकारिता को मानते हैं''।[12] जिसने जाने अनजाने ही इस जगत को दो हिस्सों में बांट दिया। एक हिस्सा जो नितांत वैयक्तिक और निजी था उसे स्त्री से जोड़ दिया गया उसकी सुरक्षा का दायित्व भी पुरुष सत्ता ने अपने ऊपर ले लिया और स्त्री से जुडे मुद्दें को विचार–विनिमय के काबिल ही नहीं समझा। दूसरा हिस्सा हमारा समाज और राजनीति का था जिसे पुरुष से जोड़ा गया क्योंकि उसके पास तर्क व बुद्धि थी ऐसा माना गया।

आज के समय में नारीवादी सिद्धांत में उदारवादी, उग्र नारीवादी, मार्क्सवादी, समाजवादी नारीवाद से लेकर नस्ल विरोधी मनोविश्लेषण और उत्तर आधुनिक नारीवाद शामिल है। उदार नारीवाद तक का संबंध व्यक्तिगत आजादी अर्थात् चयन की स्वतंत्रता, समान अवसर और नागरिक अधिकारों से था, जिसमें स्वतंत्रता और समानता का प्रश्न मुख्य रहा है। समय के आगे बढ़ने की प्रक्रिया में स्त्री विमर्श में भी नई–नई विचारधाराओं का आगमन होता गया, जिसमें 80 व 90 के दशक के बाद सांस्कृतिक, समलैंगिक, आर्थिक, उत्तर आधुनिक, उत्तर नारीवाद और अश्वेत नारीवाद (जिसे तीसरी दुनिया में दलित नारीवादी विमर्श) के नाम से जाना जाता है जैसी विचारधाराओं से हमारा परिचय होता है। इनके

माध्यम से स्त्री को समझने का एक नया पाठ हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है जो स्त्री को स्त्री के नजरिए से समझने की बात करता है।

स्त्री–विमर्श तथा धर्म

वर्तमान में दर्शनशास्त्र और धार्मिक अध्ययन के साथ–साथ अन्य अकादमिक विषयों में कई नारीवादियों ने तर्क दिया है कि लिंग के दृष्टिकोण से तटस्थ मानी जाने वाली नीतियां, प्रथाएं और सिद्धांत वास्तव में पुरुष–पक्षपाती हैं। रोजमेरी रेउथेर के अनुसार नेतृत्व और धार्मिक शिक्षा से महिलाओं के दीर्घकालिक बहिष्कार ने ष्आधिकारिक धार्मिक संस्कृतिष् को महिलाओं के प्रति दमनकारी और महिलाओं के अनुभव को खारिज कर दिया हैरू उनका मंतव्य है कि हमारे धर्मों का गहरा और मौलिक परिवर्तन शामिल होगा यदि महिलाओं को गंभीरता से लेना शुरू करेंष् इस तरह का विचार पारंपरिक धर्मशास्त्र की मान्यताओं और श्रेणियों को चुनौती देता है।[13]

धार्मिक मार्ग से स्त्रियों को वंचित रखने या पुरुषों से कम क्षमतावान मानने के पीछे भी वही रूढिग्रस्त कारण हैं जिसका मुख्य आधार प्रायरू उसके शरीर से जुडा है जो प्रजनन का दायित्व निभाता है। धार्मिक समूहों ने पारंपरिक रूप से लिंग की आधार पर निर्धारित भूमिकाओं के समर्थन में ग्रंथों का हवाला दिया है और अब भी, महत्तर परिवर्तनों और प्रयासों के बावजूद, पूर्वाग्रह बने हए हैं। सभी नारीवादियों और, कई पुरुष और महिलाएं, जो खुद को नारीवादी नहीं कहेंगे, सहमत हैं कि पुरुषों और महिलाओं को समान लागत पर और समान परिचर जोखिमों के साथ उनके लिए समान विकल्प मिलने चाहिए। व्यावहारिक दृष्टिकोण से, अतरू, विश्व स्तर पर अनेक परिवर्तन परिलक्षित हैं, यद्यपि और भी अपेक्षाएं हैं जिन्हें पूर्ण होने में कुछ समय और लगेगा।

विभिन्न विषयों की महिला विद्वानों ने अपने–अपने क्षेत्रों के संदर्भ में लिंग संबंधों के अर्थ और प्रभाव के साथ अपने स्वयं के क्षेत्रों में विशिष्ट नारीवादी अनुसंधान विकसित किया है। लिंग–विशेष का प्रभाव राजनीतिक विज्ञान के क्षेत्र में शक्ति, असमानता और राजनीतिक प्रक्रियाओं के नियंत्रण के उदाहरणों की जांच की जा रही है। सामाजिक मनोविज्ञान खुद के साथ संबंधित विभिन्न सामाजिक संदर्भों में पुरुषत्व और स्त्रीत्व की अवधारणा और उनका महत्व और कार्य की पडताल कर रहा है। इतिहास के क्षेत्र में, महिलाओं और उनके विभिन्न क्षेत्रों के ऐतिहासिक रूप से दृश्यमान प्रभाव और ऐतिहासिक प्रतिबिंब में लिंग संबंधों को शामिल करना है तो धार्मिक अध्ययनों के लिए धार्मिक प्रतीक गठन के प्रभाव की जांच करना महत्वपूर्ण है । धार्मिक समुदायों में महिलाओं की स्थिति पर और उनके रोजमर्रा के सामाजिक परिवेश में लिंग की भूमिका को निर्धारित करना है।

ऐतिहासिक सूत्रों के अनुसार धर्म तथा साधना के क्षेत्र में स्त्रियों का पदार्पण कोई आधुनिक या नया विषय न होकर कई शताब्दि पुराना है। यह मात्र भारत में ही नहीं विश्व में भी सत्य है। आधुनिक महिला आंदोलन की चिंता के प्राथमिक मामलों में से एक, न केवल, आलोचना करना और ठोस सामाजिक परिस्थितियों को बदलना है, बल्कि सिद्धांतों, विचारधाराओं और धर्मों के रूप में उनके सैद्धांतिक अधिरचना का विश्लेषण करना भी है। नारीवादी समालोचना का विकास इसी के परिणामस्वरूप हुआ है और लगभग सभी वैज्ञानिक विषयों में अनुसंधान, उनके सिद्धांतों और विधियों के साथ–साथ उनके इतिहास और आंतरिक संगठन को भी शामिल किया है।

नारीवादी दृष्टिकोण से धार्मिक अध्ययनों को स्वीकार करने की अक्सर आलोचना की जाती है । इस अनुशासन के सख्त आत्म–मूल्य ने तटस्थता का परिचय दिया। पहले से उपेक्षित विषय से संबंधित व्यक्तिगत महिला विद्वानों का विशेष क्षेत्र, अर्थात धर्म में, महिलाओं की भूमिका पर कुछ दशकों से चर्चा का विषय बना हुआ है। इन विचारों में से कोई भी स्वयं के साथ न्याय नहीं करता है । धार्मिक अध्ययन में एक नारीवादी परिप्रेक्ष्य के मूल्यांकन या उद्देश्य और परिणाम यह दर्शाता है कि नारीवादी दृष्टिकोण के समावेश का मतलब न केवल एक अधिक सटीक वैज्ञानिक प्रक्रिया में प्रगति है वरन धार्मिक अध्ययन विचारधारा को मजबूत करता है । इस्लाम, ईसाइ, हिंदू आदि धर्मों में महिलाओं के मुद्दे को अब केवल जोड़ा नहीं जा रहा है, बल्कि ऐसा काम सामने आया है जो धर्मों में लैंगिक भूमिकाओं की प्रतीकात्मक अवधारणा के विश्लेषण के संबंध में व्यवस्थित प्रश्नों को तैयार करता है। इस प्रकार न केवल धार्मिक जीवन और महिलाओं के धार्मिक अनुभवों को उनके अस्तित्व में लाया जा रहा है, बल्कि दैवीय निर्माण और महिलाओं के लिए धार्मिक भूमिकाओं पर उनके प्रभाव का संरचनात्मक रूप से विश्लेषण किया जा रहा है।

'Turning Points in Religious Studies' पुस्तक में उर्सुला किंग ने नारीवादी धार्मिक अध्ययन के क्षेत्र में विभिन्न अनुसंधान कार्यों के लिए तीन केंद्रीय क्षेत्रों को परिभाषित किया:

- धार्मिक संस्थानों में महिलाओं की भूमिका और धार्मिक स्थिति और परंपराओं की जांच ।
- धार्मिक भाषा और धार्मिक चिंतन में महिलाओं के प्रतिनिधित्व की जांच में महिलाओं के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व और महिलाओं की सामाजिक भूमिकाओं और उनके रोजमर्रा के जीवन पर इसके प्रभाव के बीच संबंध के रूप में होना चाहिए ।
- महिलाओं के धार्मिक अनुभव का वर्णन (पुरुषों के विपरीत भी) और महिलाओं के धार्मिक जीवन पद्धति का वर्णन

धार्मिक अध्ययन सचेत रूप से महिलाओं की धार्मिक प्रथाओं के साथ शुरू हो रहा है तथा महिलाओं में धार्मिक परिवर्तन और अस्तित्व निर्माण की प्रक्रियाओं पर शोध किया जा रहा है।[14]

मुक्ति की कामना से धार्मिक मार्ग पर अग्रसर स्त्रियों के प्रति विश्व के मुख्य धर्मों की प्रवृत्ति का अध्ययन एवं चिंतन आवश्यक है। वैज्ञानिक समुदाय में धार्मिक अध्ययन को एक अनुभवजन्य अनुशासन के रूप में समेकित करना अनिवार्य हो गया है। नारीवाद, अनुसंधान के हित की एक दृढ़ परिभाषा की मांग करता है जिससे पदों की स्पष्ट परिभाषा के साथ वर्तमान सामाजिक परिस्थिति में की खुली चर्चा को प्रोत्साहित करने में सक्षम होगा। सामान्यतरू धर्म में स्त्री के स्थान के विषय पर थोडा कार्य किया गया है जो प्रायरू सामाजिक संदर्भ में इस प्रश्न को देखता है। प्रस्तुत शोध इस विषय में एक नये मार्ग को स्थापित करने की आकांक्षा से प्रेरित है। विशेषतरू हिंदी भाषा में इस विषय पर कार्य बहुत अल्प मात्रा में हुआ है।

उपसंहार

धार्मिक प्रवचन महिलाओं के खिलाफ सार्वभौमिक पूर्वाग्रहों को साझा करते हैं, जिन्हें प्रलोभनों और लगाव, चंचलता के प्रतीक के रूप में देखा जाता है, और सबसे ऊपर, विश्वासघाती, धोखे की कार्रवाई (माया) को एक महिला की मुख्य विशेषता माना जाता है। कुछ हद तक, मठवासी कार्य लिंग–आधारित होते हैं और धर्मनिरपेक्ष दुनिया में घरेलू कार्यों के वितरण को पुनरू पेश करते हैं (उदाहरण के लिए, सिलाई, वस्त्रों और अन्य वस्तुओं को ठीक करना आदि)। फिर भी धर्म महिलाओं के जीवन में रचनात्मक और रूढ़िवादी शक्ति दोनों के रूप में कार्य करता हैद्य दैहिक एवं मनोवैग्यानिक रूप से स्त्री को कमजोर मानने वाला यह पितृसत्तात्मक समाज धर्म जैसे पवित्र तथा मुक्त क्षेत्र में भी उसे समान–अधिकारों से वंचित रखता है। यहां भी पुरुषों को ही अधिक अवसर तथा अधिकार प्राप्त हैं तथा स्त्री को दोयम दर्जा दिया गया है। फिर भी स्त्री हार न मानते हुए धर्म के मार्ग में भी अपने लिए एक उन्नत स्थान बनाने में संघर्षशील है। विश्व में व्याप्त राजनीतिक–सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण, धार्मिक क्षेत्र में भी, यथासाध्य प्रयत्नों द्वारा, परमात्मा परमेश्वर के साथ ऐक्य स्थापित करने के प्रति क्रियाशील है। यह एक शांत संघर्ष है। विद्रोही होने का तात्पर्य होता कि वो धार्मिक तत्वों के विपरीत कार्य कर रही है। जो उनके उद्देश्य को असफल बना देगा । यति धर्म मात्र सामान्य धार्मिक संस्कारों या क्रियाओं के पालन मात्र से नहीं जुडा । यह मार्ग जीवन के उन्नत आदर्शों के साथ जुडा प्रभु से एकाकार तथा मुक्ति की कामना के साथ संबद्ध है। मात्र तीर्थ – व्रत आदि नहीं, कठिन से कठिन तपस्या से जुडा मार्ग है जिसमें शारीरिक के साथ भावनात्मक तथा मनोवैग्यानिक शक्ति भी परमावश्यक है। अतरू धार्मिक रूढियां चाहे कुछ भी प्रस्तुत करें स्त्रियां यति धर्म के पालन के माध्यम से न सिर्फ प्रभु से एकाकार की कामना करती हैं वरन मुक्ति की कामना से भी प्रेरित हैं। धर्म, अर्थ और काम से परम सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती जब ऐसा विवेक जागृत हो जाता है। अतरू मोक्ष–प्रयत्न ही श्रेष्ठ है। ऐसा मानकर इस मार्ग का चयन किया जाता है। उत्तर आधुनिक परिवेश में विमर्श को मुख्यतरू तीन दृष्टिकोणों से देखा जा रहा है रू वर्ग, वर्ण एवं लिंग। ये तीनों अन्योन्याश्रित होते हुए भी अपने आप में स्वतंत्र हैं । साहित्य, समाज एवं संस्कृंति का अध्ययन इन तीनों पक्षों के आधार पर किया जाता है।

धर्म के मार्ग के माध्यम से भी स्त्री अपनी व्यक्तिगत सशक्तता को आभासित करने का प्रयास कर रही है। यह विश्व के लिए, सभी धर्मों के लिए, जितना सत्य है उतना ही भारत के परिप्रेक्ष्य में भी सच है। आधुनिक भारत में धार्मिक कार्यों में श्री की भूमिका अच्छी होती जा रही है। यद्यपि कुछ धर्मों में अभी भी सुधार की अपेक्षा है, तथापि उनकी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है जो आशाजनक संकेत देता है । मात्र सामाजिक प्रथाओं में नहीं, मठों एवं धार्मिक संस्थाओं के नेतृत्व का दायित्व, सफलतापूर्वक, निभा रही हैं। यति धर्म में भी स्त्रियों की संख्या बढ रही है।

संदर्भ सूचि

1. मनु स्मृति ६ध्६
2. महाभारत
3. मनु स्मृति १०८(५५)
4. वैशेषिक सूत्र १। १। २।
5. सत्यार्थ प्रकाश 3 सम्मुलास
6. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
7. धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्म लक्षणम् ॥ मनु स्मृति ६ध्६२
8. https://www-burmese&art-com/blog/major&world&religions
9. https://www-ancient-eu/religion/
10. सीमोन द वोउवार रू स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान, १६६०, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली पृ.–212
11. राजेंद्र यादव, अर्चना वर्मा, अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली २००८, पृ–20
12. महादेवी वर्मा, यामा, पृ–95
13. राजेंद्र यादव, एवं अर्चना वर्मा, अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली २००८, पृ–181

14. Rosemary Radford Ruether- ÞThe Feminist Critique in Religious Studiesß in Janet A- Kourany] James P- Sterba and Rosemarie Tong] eds-] Feminist Philosophies ¼Englewood cliffs] NJ: Prentice Hall] 1992½] pp- 252&3-
15. Ursula King: "Religion and Gender"- In: King ¼ed-½: Turning Points in Religious Studies- Essays in Honour of Geoffrey Parrinder- Edinburgh 1990] 275&286-